Volume-08
Issue-12
December-2021

ISSN: 2349-7637 (Online)
RESEARCH HUB International Multidisciplinary Research Journal
https://rhimrj.co.in/ [Peer-Reviewed Journal]
https://doi.org/10.53573/rhimrj.2021.v08i12.010

शिवप्रसाद सिंह की कहानियों में ग्रामीण यथार्थ

डॉ. श्रुति शर्मा

सह आचार्य, हिंदी विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

ARTICLE DETAILS

Article History
Published Online: 15 December 2021

Keywords
यथार्थ, औद्योगिकीकरण, आदर्शवाद, सामंती शोषण, परंपरा और आधुनिकता।

Corresponding Email:
drshrutisharma68[at]gmail.com

ABSTRACT

शिवप्रसाद सिंह स्वतंत्र्योत्तर नयी कहानी के पुरोधा साहित्यकार हैं। भारतीय स्वाधीनता आन्दोलन के बाद बदलते ग्रामीण परिवेश का यथार्थ और नग्न चित्रण उनकी कहानियों में दृष्टिगोचर होता है। उन्होंने व्यक्ति और समष्टि के विघटनकारी मूल्यों की बारीकियों की गहनता से पड़ताल की। कथा लेखन में जब उनका प्रवेश हुआ तब देश औद्योगिकीकरण, पंचवर्षीय योजना आदि तमाम विकासमान मूल्यों की तरफ गतिमान था। अम्बेडकर और गाँधी के प्रयास से दलितों में चेतना जागृत हो रही थी। गाँव का सामाजिक ढाँचा टूट रहा था। इस तरह की स्थिति में गाँव का एक परिवर्तित रूप दिखाई दिया जिसे शिवप्रसाद सिंह ने अपनी कहानियों में चित्रित किया। उनकी कहानियों में सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, जातिगत आदि विविध समस्याओं की अभिव्यक्ति मिलती है। इस सन्दर्भ में डॉ. विवेकी राय लिखते हैंकृ"बदले हुए गाँव और बिन बदली हुई गाँव के गरीबों की नियति से संबंधित सवालों को कथाकार शिवप्रसाद सिंह विविध कोणों से उठाते हैं। आर्थिक सवालों से तीखे सामाजिक सवाल हैं।"[1] इनकी कहानियों का मूल कथ्य ग्राम जीवन पर आधारित होने के कारण, इन्हें प्रेमचंद की परम्परा से जोड़कर देखा जाता है। शिवप्रसाद सिंह के समय देश आज़ाद हो गया था, जमींदारी उन्मूलन भी हो गया था, जमींदार के रूप में ठेकेदार और पूंजीपति जैसी शोषणकारी शक्तियाँ पनप रहीं थीं लेकिन सामाजिक ढाँचे में कोई बदलाव नहीं आया था। जमींदारी खत्म होने के बाद भी जमींदारों द्वारा शोषण बरकरार है।

शिवप्रसाद सिंह प्रेमचंद की परम्परा में होते हुए भी आधुनिक कथाकार हैं। इन्होंने अपनी एक अलग पहचान बनायी जो इनकी कहानियों में द्रष्टव्य है। इनकी कहानियों में परम्परा जड़ या रूढ़ि नहीं बल्कि आधुनिकता के नवीन सन्दर्भों को रेखांकित करती है। डॉ. बच्चन सिंह लिखते हैं–"परम्परा में बहुत सारे लोग आते हैं। प्रेमचन्द की परम्परा का मतलब यह नहीं है कि प्रेमचंद की अनुकृति करना। परम्परा जड़ नहीं गत्यात्मक होती है। अपनी गत्यात्मकता में वह कुछ चीजों को छोड़ती है, कुछ चीजों को लेती है तथा कुछ नया जोड़ती चलती है। प्रेमचंद की परम्परा में गाँव के माध्यम से निम्नवर्ग के प्राणियों की पीड़ा, उच्चतर नैतिकता तथा संघर्ष दिखाई पड़ता है वह अपने किस्म का शिवप्रसाद में भी है।"[2] शिवप्रसाद सिंह का अनुभव क्षेत्र गाँव जीवन की पैदावार है।

शिवप्रसाद सिंह ने अपनी कहानियों में ग्रामीण यथार्थ के विभिन्न पक्ष का अंकन किया है। इनमें परंपरागत ग्रामीण जीवन का आदर्श पहलू, स्त्री की पीड़ा, हाशिए के लोगों का जीवन आदि शामिल है। उन्होंने ग्रामीण समाज में व्याप्त रूढ़ियों एवं सकीर्णताओं पर भी कटाक्ष किया है। "...उन्होंने ग्रामीण जीवन को आदर्श यूटोपिया के रूप में चित्रित नहीं किया है। यह यथार्थ है, पर सहानुभूतिपूर्ण आधुनिक दृष्टि से ही उसे देखने परखने का प्रयत्न किया गया है।"[3] उनकी कुछेक आदर्शवादी कहानियों को छोड़ दिया जाए तो ग्रामीण जीवन के यथार्थ–चित्रण का आग्रह उनकी कहानियों में दिखाई देता है। स्वयं उन्हीं के शब्दों में, "मेरी कहानियों के पात्र अब तक के उपेक्षित वे आम आदमी रहे हैं, जिन्हें शुरू–शुरू में गँवई–गाँव के लोग कहकर टाला जाता रहा है। उनके जीवन को लेखक ने सुख– दुखात्मक दोनों पहलुओं के साथ समन्वित समग्र रूप में अंकित नहीं किया है, उनके जीवन और मन के अंतर– दर्शन का भी प्रयत्न किया है तथा अपनी संवेदना में उन्हें सजीव बनाकर चमका दिया है।"[4] समन्वित समग्र का यह प्रयास ही हमें 'कर्मनाशा की हार', बिंदा महाराजश, श्दादी माँ' जैसी कहानियों में दिखाई देता है। दरअसल शिवप्रसाद सिंह अपनी अनेक कहानियों में आदर्श पात्र का निर्माण करते दिखाई देते हैं। 'कर्मनाशा की हार' में भैरो पाँडे अपने भाई कुलदीप की टीमल मल्लाह की विधवा लड़की फूलमत से प्रेम संबंध को लेकर असहज हैं। फूलमत को जब बच्चा होता है, उन्हीं दिनों कर्मनाशा में बाढ़ आती है, पूरा गाँव फूलमत के बच्चे की बलि देना चाहता है, लेकिन तब भैरो पांडे इनकार कर देते हैं–"...सुनो! कर्मनाशा की बाढ़ दुधमुहे बच्चे और एक अबला की बलि देने से नहीं रुकेगी, उसके लिए तुम्हें पसीना बहाकर बाँधों को ठीक करना होगा।"[5]

यह कहानी एक ओर गाँव में व्याप्त रूढ़ियों एवं संकीर्णता को सामने रखती है, वहीं इसके विरोध को दिखलाकर गाँव के सकारात्मक पक्ष को भी दिखलाती है। इस कहानी के संदर्भ में स्वयं शिवप्रसाद सिंह कहते हैंकृ'कर्मनाशा की हार' मनुष्य के कर्म को नष्ट करके, उसके ऊपर सामाजिक रूढ़ि और नियति का अभिशाप लादने वाली समूची प्रवृत्ति के विरोध का प्रतीक है। कर्मनाशा हमारे समाज के वैषम्य का प्रतीक है, जिसे पराजित करना नई मानवता का सही संकल्प होना चाहिए।"[6] ग्रामीण समाज की संकीर्णता एवं रूढ़ि शिवप्रसाद सिंह की कहानियाँ में बार–बार आती है। 'रेती' में बच्चा न होने का सारा दोष स्त्री पर मढ़ देने की सामाजिक प्रवृति को दर्शाया गया है।

शिवप्रसाद सिंह सामाजिक संकीर्णताओं को दर्शाने के साथ ही समाज में मौजूद करुणा, दया को भी सामने लाते हैं।

'दादी माँ' में दादी का स्नेहमयी चेहरा है, तो 'उपधइन मैया' में उपधइन मैया लांछन सहकर भी मानवतापूर्ण चेहरा बनाए हुई है। 'बिंदा महाराज' में एक हिजड़े के माध्यम से समाज का क्रूर चेहरा दिखाया गया है। नपुंसक शरीर में आत्मा भी हो सकती है, इसे और लोग तो नहीं समझते, भाई–भतीजे भी नहीं समझना चाहते। इसलिए बिंदा महाराज को आखिरकार अकेला ही जाना पड़ता है।"[7] बिंदा महाराज का दीपू मिसर के बेटे मुन्ना से लगाव हो जाता है, मुन्ना के बीमार पड़ने पर वह मंदिर जाकर पूजा करता है, लेकिन लोग उसे ही इसका जिम्मेदार ठहराते हैं–

> "हिजड़े के साथ का असर है भाई...सोने जैसा लड़का सो गया। हवा में सहानुभूति एवं आक्रोश के शब्द टकराने लगे। 'डायन' औरतों की आवाज नागिन की सिसकारी की तरह काँपती हुई सुनाई पड़ती, लड़के को छाती से लगा लिया था।"[8]

'गंगा तुलसी' कहानी में एक विधवा स्त्री की नियति और असुरक्षित जीवन को चित्रित किया गया है। कहानी की केन्द्रीय पात्र गंगा अपने इकलौते बेटे को पढ़ाना चाहती है लेकिन उसकी आर्थिक स्थिति दयनीय है। बेटे को पढ़ाने की लालसा को पूरा करने के लिए वह जमींदार के घर चूल्हा–चौका का काम करने लगती है जहाँ उसे मजबूरन जमींदार से संबंध भी बनाना पड़ता है। गंगा इस बात को अच्छी तरह समझती है कि अगर वह ज़मीदार के कुकृत्य का विरोध करेगी तो उसके बेटे का पढ़ना तो दूर उसका इस गाँव में रहना भी मुश्किल हो जायेगा। अतरू वह अपनी आत्मा को मारकर उस परिस्थिति से समझौता कर लेती है। गंगा और जमींदार के संबंध की चर्चा पूरे गाँव में फैल जाती है। यह बात जब उसके बेटे को पता चलती है तो उसी बेटा के अन्दर सुनी–सुनाई बातों से माँ के प्रति मन में घृणा और ममता का परस्पर विरोधी भाव पनप रहा है। उसे लगता है कि शायद वह नाजायज सन्तान है। उसकी प्रश्न भरी दृष्टि को देखकर मरणासन्न माँ कहती है–"गंगा के पेट में दुनिया भर की गंदगी समाई रहती है, पर पानी कभी अपवित्र नहीं होता। तेरे में कोई पाप नहीं..."[9] जिस बेटे के लिए उसने पूरा जीवन संघर्ष किया। आज उसी बेटे को सफाई देनी पड़ रही है। उसमें सुनील का दोष नहीं है। हमारी सामाजिक व्यवस्था ही ऐसी है।

'आर–पार की माला' एवं 'मुर्गे ने बाँग दी' में शिवप्रसाद सिंह ने कटु ग्रामीण यथार्थ एवं सामंती शोषण के दुष्चक को दर्शाया है। 'आर–पार की माला' में ठाकुर षड़यंत्र कर मटरू की बेटी को रखैल बना लेता है। वह मटरू को अपने वश में कर लेता है तथा नीरु के मंगेतर रज्जब एवं उसके पिता जुम्मन पर चोरी का इल्जास मढ़ देता है और नीरू को खुलेआम रखैल बना लेता है। सामंती शोषण का ही दूसरा रूप 'मुर्गे ने बॉग दी' में दिखाई देता है। कहानी नै मंगरू भूखे पेट काम करने को विवश है, क्योंकि ठाकुर बुआई के बाद हिसाब देने की परंपरा नहीं तोड़ना चाहता। शोषण का चित्र श्पापजीवीश एवं श्माटी की औलादश में भी है। शिवप्रसाद सिंह की कहानी उस दिन तारीख थी' मैं कोर्ट–कचहरी के चक्कर में परेशान आदमी की व्यथा रखी गई है।

शिवप्रसाद सिंह ने अपनी कहानियों में औरत की पीड़ादायक सामाजिक स्थिति का बड़ी शिद्दत से चित्रण किया है। गाँवों में औरत की स्थिति और ज्यादा करुण है। नारी का शोषण हर वर्ग में एक सा है। शिवप्रसाद सिंह के अनुसार, 'मैं नारी को अलग–अलग सत्ता मानकर नहीं, समाज की क्रियाशक्ति मानकर उसके बारे में विचार करता हूँ। अतिसामान्य नारी ही मेरे लेखन में चित्रित है मैं उसमें वर्ग भेद नहीं करता, क्योंकि मुझे वर्गगत भेद कम नजर आए।[10] इस दृष्टि से उनकी 'गंगा–तुलसी', 'केवड़े के फूल', 'अरुंधती', 'धरातल', 'रेती' आदि महत्वपूर्ण कहानियाँ है। इन कहानियों में स्त्री के शोषित–लांछित जीवन को दर्शाया गया है। 'अरुंधती' में बड़की बहू पर नौकर से संबंध होने का शक पूरा परिवार करता है, उसे गर्भपात के लिए काली दवा पीने पर बाध्य किया जाता है। 'केवड़े के फूल' में भी इसी पुरुष मानसिकता का पैटर्न दिखाई देता है। एक और स्त्री का पति है जो उसे मनोरंजन की वस्तु से अधिक नहीं समझता–"...तुम्हें वह सब करना पड़ेगा जो मैं कहूंगा। तुम्हें अपने को मेरे समाज के लिए बदलना होगा... तुम मेरी ही नहीं मेरे मित्रों तक के लिए मनोरंजन की साधन हो... मेरा सारा मतलब तुम समझती होगी... सती धर्म की दुहाई देकर तुम मेरी इच्छाओं को रोक नहीं सकती।[11] दूसरी ओर उसका बाप है जो सामाजिक मर्यादा के नाम पर बेटी को पति से समझौता करने को कहता है। दूसरी शादी करने वाला है तो इसमें भी क्या हुआ, बड़े घरों के लड़के ऐसा करते ही हैं। जो दूसरी शादी नहीं करते, वे रखैल रखते हैं। इसके लिए क्या घर–बार छोड़ देना चाहिए।[12]

शिवप्रसाद सिंह की प्रसिद्ध कहानी 'नन्हों' प्रेम के द्वंद्व को दर्शाती है। 'नन्हों' कहानी में नन्हों के वैवाहिक जीवन की विडम्बनाओं, परम्परागत दाम्पत्य जीवन और प्रेम संबंधों को रेखांकित किया गया है। इस कहानी में नन्हों का वैवाहिक जीवन सिर्फ और सिर्फ एक विडम्बना या जीवन एक संत्रास बनकर रह गया है, जिसमें उसे आत्मपीड़ा के अलावा कुछ नहीं मिलता है। 'नन्हों' की शादी के लिए लड़का रामसुभग (जो सुंदर, सुडौल है) दिखाया जाता है लेकिन शादी एक अनदेखे लड़के मिसरीलाल (पैर से विकलांग) से होती है। यह बात नन्हों के पिता को मालूम है लेकिन बेटी के अच्छे घर और वर के लिए दहेज़ देने की औकात नहीं है। अतरू वह इस बात का जिक्र भी नहीं करता है। हाथ भर घूँघट के नीचे आँसुओं को सुखाती हुई नन्हों सुहागिन बनी। शादी के बाद से ही नन्हों की नियति का चक्र पूरे जीवन किसी न किसी रूप में आस–पास मंडराता रहता है। शादी के धोखे की पीड़ा से वह उबर नहीं पाई थी कि पति की मृत्यु हो गयी। ये "काँच की चूड़ियाँ भी किस्मत का अजीब खेल खेला करती हैं। नन्हों जब इन्हें पहनना नहीं चाहती थी तब तो ये जबर्दस्ती उसके हाथों में पहना दी गयीं और अब जब इन्हें उतारना नहीं चाहती तो लोगों ने जबर्दस्ती हाथों से उतरवा दिया।"[13] नन्हों अपना पूरा जीवन सामाजिक मर्यादा और नैतिक दबाव में काट देती है। ह्रदय में आत्मपीड़ा को दबाये वह अकेले जीवन के संघर्षों से लड़ रही है। आधुनिकता के इस दौर में सामाजिक ढाँचा बदल रहा है। इस परिवर्तन को देखकर शिवप्रसाद सिंह ने 'नन्हों' कहानी के संदर्भ में कहा है–"नन्हों मध्यवर्गीय नारी का प्रतिनिधित्व करती है, उसे शायद इतनी छूट मिल जाये कि वह भविष्य में अपनी मजबूरियों से बचने के लिए कोई रास्ता ढूंढ ले, क्योंकि समाज का नैतिक ढाँचा काफी तेजी से बदल रहा है।"[14]

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि शिवप्रसाद सिंह की कहानियाँ ग्रामीण जीवन के सकारात्मक पक्ष के साथ उसके कटु यथार्थ को भी उजागर करती हैं। उनकी कहानियों पर अस्तित्ववादी प्रभाव भी देखा गया है। ऐसी कहानियों में 'सुनो परीक्षित सुनो', 'उस दिन तारीख थी', आदि का नाम लिया जाता है।

संदर्भ–

1. विवेकी राय, हिंदी कहानी : समीक्षा और सन्दर्भ, राजीव प्रकाशन, इलाहाबाद, 1985, पृ. 27
2. कामेश्वर प्रसाद सिंह, कथाकार : शिवप्रसाद सिंह, संजय बुक सेंटर, वाराणसी, 1985, पृ. क
3. डॉ. एस.टी. नरसिंहाचारी, शिवप्रसाद सिंह : स्रष्टा और सृष्टि, संपादक, पांडेय शशिभूषण शीतांशु, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 1995, पृ. 274
4. वही, पृ. 278
5. अंधकूप; कहानी–संग्रह, शिव प्रसाद सिंह, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2003, पृ. 61
6. शिवप्रसाद सिंह, मेरे साक्षात्कार, किताबघर, नई दिल्ली, 1992 पृ. 22
7. डॉ. सत्यदेव त्रिपाठी, शिवप्रसाद सिंह का कथा साहित्य, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1988, पृ. 121
8. शिवप्रसाद सिंह, अंधकूप, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 1985, पृ. 266
9. शिवप्रसाद सिंह, अंधकूप, अंधकूप, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2005, पृ. 231
10. शिवप्रसाद सिंह, मेरे साक्षात्कार, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, 1995, पृ. 23
11. शिवप्रसाद सिंह, अंधकूप, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 1985, पृ. 179.
12. वही, पृ. 178
13. शिवप्रसाद सिंह, एक यात्रा सतह के नीचे, अंधकूप, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2005, पृ. 27
14. शिवप्रसाद सिंह, मेरे साक्षात्कार, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, 1995, पृ. 13